सरल आदमी की कठिन बात

हरिशंकर परसाई

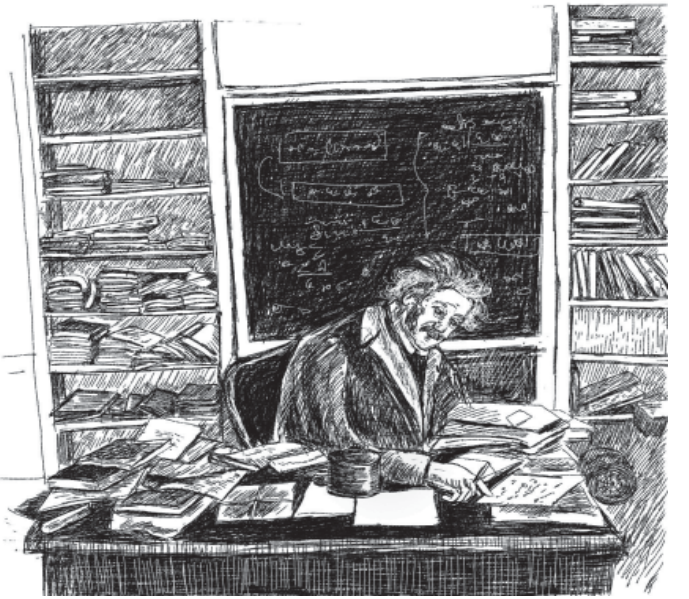

उस सरल आदमी का नाम अल्बर्ट आइंस्टाइन था। वह बच्चों जैसा भोला और बृहस्पति जैसा ज्ञानी था। बीसवीं शताब्दी के इस महान वैज्ञानिक, गणितज्ञ और मानवतावादी ने जिन सिद्धान्तों को विकसित किया, उनमें से एक 'सापेक्षता का सिद्धान्त' है। यह इतना गहन है कि किसी समय कहा जाता था कि दुनिया के केवल तीन व्यक्ति इसे समझते हैं।

यह सिद्धान्त जिसे बड़े-बड़े विज्ञानशास्त्री मुश्किल से समझते हैं, उसे सामान्य जन कैसे समझेंगे?

सिद्धान्त चाहे कितना ही कठिन हो, वह इन्सान बड़ा सरल था। आइए, उसके जीवन को समझने का प्रयत्न करते हैं।

आइंस्टाइन यहूदी थे। उस दौर में, कई ईसाई यहूदियों के प्रति अच्छा भाव नहीं रखते थे, क्योंकि ईसा को सूली पर चढ़ाने वाले लोग यहूदी थे। इसलिए इस समुदाय के भले लोगों

को भी कई ईसाइयों की घृणा का शिकार होना पड़ता था। हिटलर के ज़माने में नाज़ियों ने यहूदियों पर जो अत्याचार किए, वे कँपा देने वाले हैं। लाखों यहूदी, जिनमें बच्चे और बड़े, सभी शामिल थे, बड़ी निर्ममता से मार डाले गए। उन्हें अवर्णनीय यातनाएँ दी गईं।

आइंस्टाइन एक ईसाई स्कूल में पढ़ते थे। बचपन में ही उन्हें आभास हो गया था कि वे किसी अपराध के भागीदार माने जाते हैं। एक दिन आइंस्टाइन के शिक्षक कक्षा में एक कील लाए और उसे दिखाकर उन्होंने कहा कि इस कील से ही ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया गया था। कक्षा में बैठे सभी विद्यार्थियों की आँखें एकाएक आइंस्टाइन की ओर घूम गईं। वे बेचारे घबरा गए। उन्हें कुछ सूझा नहीं कि उन दर्जनों जोड़ी आँखों से कैसे बचा जाए। दुविधा और शर्म के कारण वे बिना एक शब्द बोले कक्षा से सीधा बाहर निकल गए, खुली हवा में चैन की साँस लेने के लिए।

विद्रोह

फिर तो आइंस्टाइन ने अपना सारा समय पुस्तकों में लगाने का निश्चय किया। सैकड़ों साल पुराने वैज्ञानिकों, मनीषियों, कवियों से उनने सम्पर्क स्थापित कर लिया – उनकी पुस्तकें पढ़-पढ़ कर। उनके लिए उन पुस्तकों में भी संगीत जैसी सात्विकता और विविधता थी। उनके ज़रिए अनगिनत रहस्य आइंस्टाइन के सामने खुलते जाते।

पर इसी समय उनके पिता पर गाज-सी गिरी। उनका व्यापार चौपट हो गया और सारा कुटुम्ब म्यूनिक छोड़कर मिलान चला गया। म्यूनिक में रह गए तो बस आइंस्टाइन – सोलह वर्ष का एक अकेला अनुभवहीन युवा।

पिता तो चाहते थे कि बेटा उन्हें व्यापार में मदद करता या इंजीनियर बन जाता। आइंस्टाइन का मन इस विचार से ही विद्रोह कर उठता। वह न तो व्यापार करना चाहते थे और न इंजीनियर बनना। पर दूसरों को समझाया कैसे जाए? अपनी इच्छा व्यक्त कैसे की जाए? वे आगे गणित पढ़ना चाहते थे। साधनों के अभाव में उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति असम्भव-सी लगती थी। मगर जैसे-तैसे पिता को मना लिया गया और पूरी तैयारी से वे ज़्यूरिक पॉलीटेकनिक अकादमी में भर्ती होने के लिए प्रवेश-परीक्षा में बैठ गए। बैठ तो गए, पर वे असफल रहे। मगर वे इससे हारे नहीं। एकाग्र होकर फिर पढ़ाई में जुट गए और अगली परीक्षा में सफलता प्राप्त करके उनने अकादमी में प्रवेश पा लिया।

सभी तो हैं ज़रूरी

अकादमी से पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद अब आइंस्टाइन अपने से ही

पूछते, "तेरे जीवन का लक्ष्य आखिर है क्या?" और तब बहुत-सी बातें, बहुत-बहुत-सी चीज़ें उनके सामने एकसाथ आ खड़ी होतीं – अपना घर, माता-पिता, भाई-बहन, अपना गाँव, अपना समाज, अपना देश। और अपनी शिक्षा, अपनी बुद्धि और अपनी लगन के माध्यम से लोक-कल्याण – ये सभी तो उनके जीवन के अविभाज्य अंग हैं। इनमें से चुनाव कैसे करें वे? सभी तो उनके लिए परमावश्यक हैं, सभी के प्रति तो उनका उत्तरदायित्व है।

तब आइंस्टाइन विकल होकर खुद से कहते कि अच्छा-अच्छा सब रहें! सबको साथ लेकर वे चलेंगे, सबको सँभालेंगे, सबको!

फिर वे खुद से ही पूछ बैठते, "क्या करूँ?"

उन्हें लगता कि आसपास के सब लोग ठीक काम कर रहे हैं। केवल वे ही अव्यवस्थित हैं, केवल वे ही अकर्मण्य हैं। वे लोग दुकान जाते हैं, नौकरी करते हैं, स्कूल में पढ़ते-पढ़ाते हैं, पूजा-पाठ करते हैं... कुछ-न-कुछ सब करते हैं। वे सब कर्मठ हैं।

तब आइंस्टाइन को खयाल आया कि क्यों न वे अपनी पढ़ाई के सर्टिफिकेट का उपयोग करें। वे पढ़ा तो सकते ही हैं। पर नौकरी मिलना इतना आसान भी नहीं था। यहाँ-वहाँ भटके, पर उन्हें नौकरी पर लेने को कोई तैयार नहीं था, क्योंकि वे यहूदी थे।

थककर बैठते तो फिर उन्हें अपनी अकर्मण्यता का ध्यान आता, और वे दोबारा नौकरी की तलाश में व्यस्त हो जाते।

काम का आदमी

आखिरकार बर्न में उन्हें साधारण-सी क्लर्की मिली। वे खुद को समझाते – हाँ, हाँ! तुम भी काम के आदमी हो, कर्तव्य पूरा कर रहे हो।

क्लर्की तो वे करते ही, साथ ही दिक् (स्पेस) और काल (टाइम) के विषय में गहन अध्ययन भी जारी रखते। खाली समय में पेंसिल-कागज़ लेकर तरह-तरह के फॉर्मूले लिखते और अपनी एक सहपाठी को वह सब दिखाते।

दिन-रात एक करके वे पढ़ते और लिखते रहते थे। जितना भी उनसे हो सकता था, जी तोड़कर परिश्रम करते। और अब यह बात, यह आदत उनके हर काम में शुमार हो गई थी। दुनिया के साथ या समाज के साथ आइंस्टाइन ने जो कुछ भी किया, हृदय और लगन से किया। तभी तो वे अपने अनुसन्धान में व्यस्त रहे और विज्ञान की साधना करते रहे।

विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए वे लगातार हाथ-पैर पटकते रहे। उनकी साधना की पहले तो कहीं कोई इज़्ज़त नहीं हुई। उन्हें कोई पुरस्कार न मिला। विज्ञान के किसी भी महारथी ने उनकी पीठ न ठोंकी। कहीं उनका फोटो न छपा। उनकी

मेहनत का मूल्य न मिला। जो दस-पाँच आदमी उन्हें जानते थे, उनकी राय थी कि ये साधारण कोटि के प्रतिभाशाली, तरुण वैज्ञानिक हैं और अपने विषय को अच्छी तरह जानते हैं।

जब वे रात को थककर, चकनाचूर होकर लेट जाते तो सोचते कि अब आखिर वे आगे क्या करें। वे कोई प्रसिद्ध विद्वान नहीं, धनी नहीं, यशस्वी वैज्ञानिक नहीं! उन्नति उनने की नहीं, किसी क्षेत्र में भी नहीं। न उनने भोग-विलास किया, न उनने कभी गौरव पाया, न उनकी कहीं कोई गिनती है। उनने क्या-क्या सोचा था! कुछ नहीं हुआ!

ठीक ही है, अन्तिम कोशिश वे और करेंगे!

विश्व की स्वीकृति

इसी सिलसिले में धड़कते हृदय से उनने एक लम्बा-सा लेख लिखा और उसे उस समय के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जर्नल *एनालेन डर फिज़िक* में भेज दिया। साथ में भेजे पत्र में उनने उस जर्नल के सम्पादक से विनती की कि यदि सम्भव हो तो वह लेख प्रकाशित कर दिया जाए।

लौटती डाक से खबर आई कि उनका लेख बहुत अच्छा है और

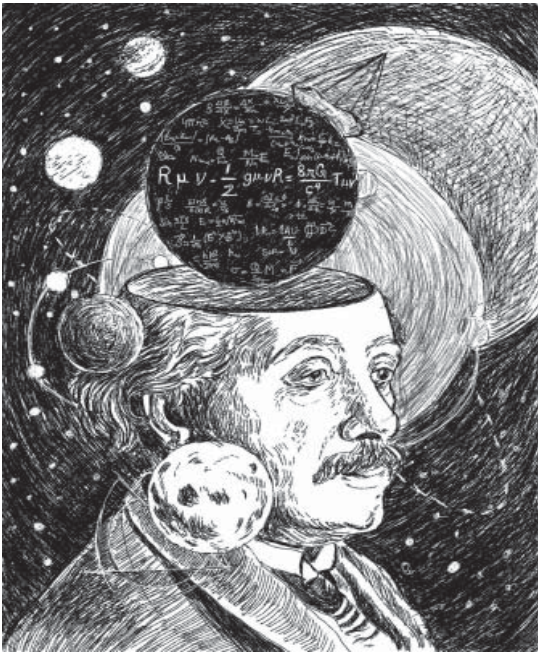

आइंस्टाइन का चमत्कारी वर्ष

दरअसल, 1905 में, जिसे 'आइंस्टाइन का चमत्कारी वर्ष' भी कहा जाता है, *एनालेन डर फिज़िक* में आइंस्टाइन के चार लेख प्रकाशित हुए थे। माना जाता है कि इन चार लेखों ने आधुनिक भौतिकी की नींव रखने में बेहद अहम योगदान दिया और साथ ही, ब्रह्माण्ड, प्रकाश, पदार्थ, दिक् और काल को लेकर हमारी समझ में क्रान्ति ला दी।

1. प्रकाश-विद्युत प्रभाव से सम्बन्धित अपने पहले लेख में, आइंस्टाइन ने प्रस्तावित किया कि प्रकाश 'प्रकाश क्वांटा' नामक कणों (जिन्हें बाद में 'फोटॉन' कहा जाने लगा) से बना होता है। इस प्रस्ताव ने प्रकाश की दोहरी प्रकृति (कणों और तरंगों, दोनों के रूप में) की अवधारणा और क्वांटम मैकेनिक्स के विकास में ज़बरदस्त योगदान दिया।
2. उनके दूसरे लेख ने ब्राउनी गति की सैद्धान्तिक व्याख्या के ज़रिए परमाणुओं की मौजूदगी के साक्ष्य मुहैया करवाए। इसने परमाणुवाद को और पुख्ता किया।
3. उनका तीसरा लेख सम्भवतः सबसे अधिक क्रान्तिकारी रहा। इस लेख में उन्होंने विशिष्ट सापेक्षता के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया जिसके तहत प्रकाश की निरन्तर गति को छोड़कर सबकुछ (जैसे समय, दूरी, द्रव्यमान) सापेक्ष है।
4. चौथा लेख पिछले लेख का ही दूसरा भाग था, जो विशिष्ट सापेक्षता के नतीजों पर केन्द्रित था। इसी लेख में प्रसिद्ध समीकरण $E = mc^2$ विकसित किया गया था।

- सम्पादकीय टिप्पणी

जर्नल में छपेगा।

उनका लेख प्रकाशित हो गया! उनकी वह कृति प्राणों को छूकर, हृदय से चिपटकर किसी तरह इस बाह्य जगत में आ गई। इससे पहले बस दिल में थी, उनकी थी, पर अब तो सबके बीच पहुँच गई थी। उनने उत्सर्ग किया था।

और इसके साथ ही आइंस्टाइन अब विश्व के हो गए। विज्ञान के हर पारखी, हर पण्डित और विद्यार्थी की ज़ुबान पर उनका नाम पहुँचकर सब का बन गया था। दुनिया के कोने-कोने में उनकी ख्याति फैल गई, उनका महत्व स्वीकार कर लिया गया।

मामूली-सा क्लर्क अब अचानक महान वैज्ञानिक बन गया, पल भर में, मानो एक रात में ही यह सब उलट-फेर हो गया था!

किस खिड़की से देखें दुनिया?

स्पिनोज़ा के सर्वेश्वरवाद सम्बन्धी विचारों के वे प्रबल समर्थक थे। मगर

न्यूटन के पूर्ण स्थिर अवस्था के विचार का कतई नहीं। न्यूटन के अनुसार एक पूर्ण रूप से स्थिर 'विशिष्ट' सन्दर्भ विन्यास (फ्रेम ऑफ रेफरेंस) हुआ करता है जिसके विरुद्ध गति को मापा जा सकता है। आइंस्टाइन ने इस कल्पना का खण्डन किया और कहा कि वास्तव में प्रत्येक वस्तु चलायमान है, प्रत्येक वस्तु में गति है। यानी कि पूर्ण स्थिर अवस्था में कोई भी वस्तु नहीं है और इसलिए कोई 'विशिष्ट' सन्दर्भ विन्यास भी नहीं है। पर वस्तुओं की गतियों में आपस में एक सम्बद्धता-सी है, उनकी तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। हाँ, केवल प्रकाश की गति (वैक्यूम में) सभी अवलोकनकर्ताओं के लिए निरन्तर है और उनके सन्दर्भ विन्यास से स्वतंत्र है। प्रकाश की गति लगभग 1 लाख 86 हज़ार मील प्रति सेकंड है। यही सबसे अधिक गति है, जो हम जानते हैं। इसी गति को आधार मानकर अन्य वस्तुओं की गति की तुलना की जा सकती है।

सापेक्षता के सिद्धान्त में गति के अतिरिक्त दिशा का ध्यान भी रखा जाता है। यदि एक पत्थर किसी ऊँची जगह से धरती पर गिराया जाए, तो हमें वह पत्थर सीधी रेखा में गिरता दिखाई पड़ेगा। इसी पत्थर को गिरते हुए यदि कोई ऐसा व्यक्ति देखे जो पृथ्वी के अलावा किसी अन्य स्थान या ग्रह पर हो, तो उसे पत्थर के गिरने की दिशा गोलाकार दिखाई पड़ेगी।

गति और दिशा के साथ-ही-साथ वस्तु का आकार भी नहीं भुलाया जा सकता। यदि किसी वस्तु की गति प्रकाश की गति के बेहद नज़दीक हो तो उसके अवलोकनकर्ता को उस वस्तु का आकार छोटा नज़र आने लगेगा। यानी मान लीजिए कि एक ऐसी रेलगाड़ी है जो प्रकाश की गति

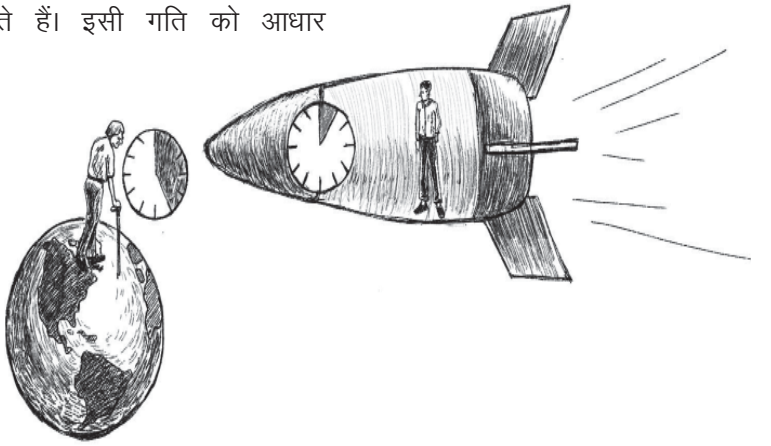

के बेहद नज़दीक की गति से भागती है, तो बाहर खड़े किसी व्यक्ति को उस रेलगाड़ी की लम्बाई छोटी प्रतीत होगी। रेलगाड़ी की आम गति में आकार की यह आभासी सिकुड़न इतनी सूक्ष्म होती है कि उसे देखा नहीं जा सकता।

गति के बढ़ने के साथ-साथ आभासी आकार उसी अनुपात में छोटा होता जाता है। हम एक छड़ी नापें और उसकी लम्बाई एक गज निकले। यही छड़ी यदि प्रकाश की गति से भागे, अर्थात् छड़ी एक सेकंड में एक लाख 86 हज़ार मील की गति प्राप्त कर ले, और इस स्थिति में छड़ी की लम्बाई नापी जाए तो वह केवल 0 (शून्य) प्रतीत होगी। तेज़ी-से भागती उस छड़ी की कोई लम्बाई-चौड़ाई नज़र नहीं आएगी।

इसी तरह, स्थान और समय के माप भी केवल तुलनात्मक/सापेक्ष रूप से किए जा सकते हैं। इनका स्वतंत्र अस्तित्व है ही नहीं। भूत, वर्तमान और भविष्य तो तीन पृथक बिन्दुओं के समान हैं। बम्बई, दिल्ली और कलकत्ता के समान अलग-अलग। जिस तरह बम्बई से दिल्ली जाया जा सकता है, उसी प्रकार आज से बीते कल पर पहुँचा जा सकता है। धरती से बहुत दूर खड़ा कोई व्यक्ति भूत, वर्तमान और भविष्य को अलग-अलग देख सकता है।

यदि प्रकाश की गति से भागना सम्भव हो सके तो मनुष्य अपनी जन्म-तिथि तक पीछे छोड़ सकता है और उससे भी आगे निकल सकता है। पर व्यावहारिक रूप में यह असम्भव है। इससे स्पष्ट है कि समय भी तुलनात्मक इकाई है।

प्रत्येक ग्रह की अपनी खुद की समय की इकाई है। हर ग्रह का समय नापने का अपना अलग पैमाना है।

हमने आज रात में एक तारा देखा। पर क्या वह तारा हम ज्यों-का-त्यों देख रहे हैं? नहीं। उस तारे से जो किरणें चली थीं, उन्हें हमारी आँखों तक पहुँचने में अरबों साल लगे होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वह तारा जैसा अरबों वर्ष पूर्व था, वैसा आज हमने देखा। मान लीजिए, किसी अन्य ग्रह के निवासी हमारी पृथ्वी की घटनाओं को देख रहे हैं। तो, यह भी हो सकता है कि किसी दूर के निवासियों ने आज या कल हमारा कोई युद्ध देखा हो। और धरती पर यह युद्ध सैकड़ों वर्ष पूर्व हो चुका हो। धरती का आज या वर्तमान अन्य के लिए कल या भूत हो सकता है।

कवि का आनन्द

जिन आइंस्टाइन को एक समय यूरोप में नौकरी के लिए दर-दर ठोकरें खानी पड़ी थीं, जिन्हें यहूदी होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखा जाता था, उन्हीं आइंस्टाइन को ज़्यूरिक में प्रोफेसर का पद प्रदान किया गया। आइंस्टाइन को

पारम्परिक ढंग से विज्ञान पढ़ाने में अधिक रुचि न थी। उनका मत था कि पारम्परिक तौर पर प्रोफेसर तो सिर्फ तथ्य-संग्रह करते हैं, जैसे कुत्ते हड्डी जमा किया करते हैं। शायद ही कोई विरला शिक्षाशास्त्री होगा जिसके पास कवि जैसे संवेदनशील और भावुक मस्तिष्क और हृदय होंगे। आइंस्टाइन का मत था कि वैज्ञानिक या भौतिकशास्त्री को अपनी खोज में वैसा ही आनन्द आता है, जैसा कवि को कविता लिखने में। दोनों ही कवि हैं। उनके इस कथन का मज़ाक़ उड़ाने में विज्ञान के पण्डित कभी नहीं चूकते थे।

अपने इस कथन को ये वैज्ञानिक अपने दैनिक जीवन में भी सार्थक करते थे। रोज़मर्रा के जीवन की बातों में वे बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। अपने बच्चे को बाबा-गाड़ी में बैठाकर घुमाने में उन्हें अत्यधिक सुख प्राप्त होता था, इतना सुख तो उन्हें किसी विश्वविद्यालय में भाषण देने में भी न आता था। रास्ते में पैदल आते-जाते वे सापेक्षवाद के गूढ़ और मनोरंजक सिद्धान्तों की कल्पना में डूबे रहते। न जाने कितने सिद्धान्तों के बारे में उन्होंने चलते-फिरते ही सोच-विचार किया होगा।

बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनने के बाद भी आइंस्टाइन अपनी पिछली ज़िन्दगी न भूले थे। अच्छे दिनों में, प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करने के पश्चात् भी वे क्लर्की के उन दिनों को याद करते थे।

समझे कौन?

उन्होंने कहा था, "अगर सापेक्षवाद का सिद्धान्त सही साबित हो जाता है तो जर्मनी मुझे जर्मन कहेगा और फ्रांस मुझे विश्व-नागरिक घोषित कर देगा। अगर मेरा सिद्धान्त गलत साबित हो जाता है तो फ्रांस मुझे जर्मन और जर्मनी मुझे यहूदी घोषित कर देगा।"

आइंस्टाइन दुनिया वालों के स्वभाव से परिचित थे और मानवीय कमज़ोरी का वे ज्ञान रखते थे। सफलता प्राप्त होती है, तो समस्त विश्व प्रशंसक बन जाता है। सापेक्षवाद सही निकलते ही उनके यहाँ लोगों का ताँता लगा रहता - पत्रकार, प्रोफेसर, फोटोग्राफर उनके पीछे पड़े रहते। उनका राह चलना मुश्किल हो गया, कार्य करना कठिन हो चला। इतना समय न मिल पाता कि आगे कुछ और खोजबीन की जा सके। बायरन जैसी एक रात की प्रसिद्धि ने आइंस्टाइन के मन पर किसी प्रकार के अहं, विकार और मिथ्याभिमान को जमने नहीं दिया। पत्नी से आइंस्टाइन मज़ाक में कहते कि यह तड़क-भड़क, शोर-गुल, विज्ञापन बस चन्द दिनों का है। जनता शीघ्र उन्हें भूल जाएगी। लोग उनके बारे में बस बात करना जानते हैं, उन्हें समझता कोई नहीं।

कोई अभिनेता उन्हें अपना मैनेजर

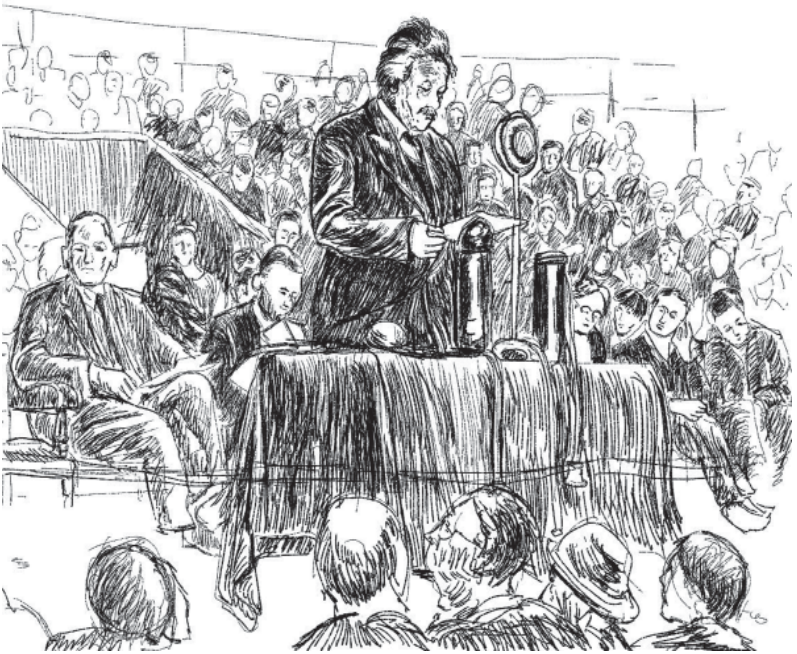

बनाना चाहता, एशिया के जंगलों में जाने वाले उनके मार्गदर्शन की अपेक्षा करते। एक सिगार बनाने वाली कम्पनी ने एक नए किस्म का सिगार बनाया और उसका नाम 'रिलेटिविटी' रखा।

पर आइंस्टाइन गौतम बुद्ध की तरह किसी भी कोटि के सम्मान के प्रति निर्लिप्त-से रहे। सभा, पार्टियों में जाते तो पुराने गरम कपड़े पहनते। दिखावे से दूर भागते। नहाने और दाढ़ी बनाने का साबुन एक ही रखते, जिससे किसी तरह का व्यवधान उत्पन्न न हो।

एक बार बेल्जियम की साम्राज्ञी ने आइंस्टाइन को आमंत्रित किया था। उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर दर्जनों कीमती कारें खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। वे रेलगाड़ी से उतरे तो उनके एक हाथ में छोटा सूटकेस और दूसरे हाथ में वायलिन था। भद्रपुरुष आइंस्टाइन को खोजते रहे, पर उन्हें कहीं भी कोई रोबीला या महान दिखने वाला वैज्ञानिक नहीं दिखाई दिया। हारकर, निराश होकर वे सब लौट गए। और तब तक आइंस्टाइन पैदल चलकर साम्राज्ञी के महल पहुँच चुके थे। साम्राज्ञी एकदम से चौंक गईं। वैज्ञानिक ने कह दिया

कि उन्हें पैदल चलना अधिक रुचा। कीमती कारों की उन्हें परवाह कभी नहीं रही।

ज़िन्दगी में आइंस्टाइन सदा पैदल चलते रहे। तड़क-भड़क, शोरगुल उन्हें बिलकुल पसन्द न थे। धन इकट्ठा उन्होंने कभी नहीं किया और न करना चाहा। बड़े अजीब प्रस्ताव आते उनके पास। सम्पादक लाखों रुपए देना चाहते, किसी भी प्रकार के लेख के लिए। ऐसे मौकों पर वे क्रोध से उबल पड़ते।

अमन की यात्रा

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आइंस्टाइन ने अनेक 'शत्रु देशों' की यात्रा की और भाषण दिए, ताकि विभिन्न देशों के बीच मैत्री पुनः स्थापित हो जाए। उन दिनों पेरिस या लंदन में जर्मन बोलना खतरे से खाली नहीं था, तो भी वे अपना भाषण जर्मन में देते और श्रोताओं की सहानुभूति अर्जित करने में पूरी तरह सफल होते।

एक समय एक रूसी के हाथों उनकी हत्या होते-होते बची। जर्मनी का एक वर्ग उन्हें फूटी आँखों न देखता था। उनका नाम ब्लैकलिस्ट में आ चुका था। यहूदी होने के कारण उनसे घृणा की जाती। इस परिस्थिति में वे चुपके से हॉलैंड चले गए। वहाँ भी उन्हें चैन न मिला।

आइंस्टाइन ने कई पूर्वी देशों की यात्रा भी की। ये अभूतपूर्व यात्री, दार्शनिक और वैज्ञानिक गणित के सूत्रों और वायलिन के साथ फिलिस्तीन, स्पेन और दक्षिण अमेरिका तक घूम आए।

युद्ध-शस्त्र

नवम्बर 1932 में आइंस्टाइन कुछेक वैज्ञानिकों से वार्तालाप कर रहे थे। उन्हें बताया गया कि हिटलर ने जर्मनी में एक भयानक तूफान पैदा कर दिया है और विश्व में भयानक उथल-पुथल और संघर्ष होने वाले हैं। और इसके चलते उन्हें जर्मनी छोड़कर अमेरिका आना पड़ा।

और इस वैज्ञानिक, महान दार्शनिक, शान्ति के पुजारी के जीवन में सन् 1939 में एक ज़बरदस्त मोड़ आया। इस घटना ने उनकी समस्त चेतना और जीवनधारा को आमूलचूल रूप से झकझोर दिया। उस समय वे अपने जीवन की शायद सबसे बड़ी, अक्षम्य भूल कर बैठे।

अपने सहयोगी वैज्ञानिक साथियों के कहने पर आइंस्टाइन ने तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति रूज़वेल्ट के सामने पेश किए जाने वाले एक पत्र पर अपना दस्तखत किया। पत्र में बताया गया था कि नाज़ी जर्मनी ने अणु का विभाजन सफलता पूर्वक कर लिया था और सम्भवतः वे अणु-बम विकसित करने में लगे थे। अणु-विभाजन का सैनिक-महत्व भी राष्ट्रपति को बतलाया गया और उन्हें अणु-विभाजन पर अनुसन्धान कार्य के लिए एक कार्यक्रम शुरू करने का

सुझाव दिया। और इस तरह इस पत्र ने 'मैनहैटन प्रोजेक्ट' के शुरू किए जाने को प्रभावित किया, जिसका लक्ष्य था, अणु-बम विकसित करना।

बाद के दौर में, आइंस्टाइन ने तत्कालीन अमेरिकन राष्ट्रपति ट्रूमैन से भी प्रार्थना की थी कि अणु-विभाजन से उत्पन्न होने वाली प्रचण्ड शक्ति का उपयोग युद्ध या विध्वंसक शस्त्र बनाने के लिए न किया जाए।

पर विज्ञान की पराजय हुई। राजनीति ने विज्ञान की आत्मा पर पैर रखकर ऐसा भयानक शस्त्र बनाया जो मानवता के लिए सदा-सदा के लिए अभिशाप बन गया।

हिरोशिमा और नागासाकी में जो विनाश-लीला देखने में आई, उसने आइंस्टाइन की आत्मा में सदैव के लिए गहरे घाव अंकित कर दिए थे। सन् 1945 का वर्ष उस वैज्ञानिक के लिए बहुत ही दुश्वार गुज़रा।

तब से आइंस्टाइन विश्व-सरकार के पक्षधर हो गए। सन् 1955 में उनकी मृत्यु हुई, लेकिन आखिरी दम तक उन्होंने एक सुनहला सपना देखा, जिसमें दुनियाभर के अरबों लोग एकसाथ रह सकेंगे, जात-पात, काले-गोरे, ऊँच-नीच की क्षुद्रतम सीमाओं का कुछ भी महत्व न रहेगा। मानवता चैन और सुख-शान्ति का अनुभव करेगी। एक सुनहरा ख्वाब!

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

चित्र: हरमन: चित्रकार हैं। दिल्ली कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली से फाइन आर्ट्स (चित्रकारी) में स्नातक और अम्बेडकर यूनिवर्सिटी, नई दिल्ली से विज़ुअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। भटिंडा, पंजाब में रहते हैं।

यह विज्ञान गल्प मित्र-बन्धु-कार्यालय, जबलपुर द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित हरिशंकर परसाई की किताब *वैज्ञानिक कहानियाँ* से लिया गया है। यह किताब तैलंगाना क्षेत्र की ग्यारहवीं कक्षा के लिए नॉनडिटेल्ड प्रथम भाषा की पाठ्यपुस्तक के रूप में आन्ध्र प्रदेश शिक्षा विभाग द्वारा दी गई स्वीकृति के तहत प्रकाशित की गई थी।

यह लेख मूल लेख का सम्पादित स्वरूप है जिसमें तथ्यात्मक त्रुटियों को ठीक करने के साथ ही पठनीयता बेहतर करने की भी कोशिश की गई है।